झारखंड उच्च न्यायालय रांची

रिट याचिका (एस) सं. 1341/2017

उषा रानी याचिकाकर्ता

बनाम

1. झारखंड राज्य
2. सचिव, महिला, बाल कल्याण और सामाजिक सुरक्षा विभाग
3. सरकार, महिला, बाल कल्याण और सामाजिक सुरक्षा विभाग के विशेष सचिव

उत्तरदाता

कोरमः माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय प्रसाद

याचिकाकर्ता के लिए : श्री सौरभ शेखर, अधिवक्ता

श्री अनुराग कुमार, अधिवक्ता

श्री अमन दयाल सिंह, अधिवक्ता

राज्य के लिएः श्रीमती वंदना सिंह, वरिष्ठ स्थाई अधिवक्ता III

श्री अश्विनी भूषण, वरिष्ठ स्थाई अधिवक्ता III के सहायक अधिवक्ता

<u>अदालत में मौखिक निर्णय</u>

10/20.02.2024 : यह रिट याचिका याचिकाकर्ता की ओर से ज्ञापन संख्या 3132 (इस रिट आवेदन के अनुलग्नक-14) के माध्यम से पारित आदेश में निहित सजा के आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसके तहत विभागीय कार्यवाही के समापन के बाद याचिकाकर्ता को "संवर्ग के न्यूनतम पैमाने पर कमी" की सजा दी गई है और उत्तरदाताओं को वेतन के सभी बकाया और सभी परिणामी लाभों को जारी करने का निर्देश देने के लिए, जो दिनांक 21.11.2016 के दंड के आदेश के कारण रोक दिए गए हैं।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री सौरव शेखर और राज्य के विद्वान वकील श्रीमती वंदना सिंह को सुना।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि दिनांकित 21.11.2016 का विवादित आदेश अवैध, मनमाना और कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि दिनांकित 21.11.2016 सजा का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए और किसी भी गवाह से पूछताछ किए बिना पारित किया गया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि विभागीय कार्यवाही ज्ञापन संख्या 1393 दिनांक 20.09.2007 (अनुलग्नक-4) में निहित आदेश के माध्यम से शुरू की गई है और उसके खिलाफ आरोप दिनांक 30.8.2007 को बनाए गए थे और जो उसे दिनांक 30.8.2007 को दिए गए थे और जांच की गई थी और जांच अधिकारी ने माना कि याचिकाकर्ता किसी भी गवाह की जांच के बिना और किसी भी दस्तावेज को प्रदर्शन के रूप में साबित किए बिना आरोप 1 और 2 के संबंध में दोषी है।

यह प्रस्तुत किया जाता है कि विभागीय कार्यवाही याचिकाकर्ता के खिलाफ लंबित आपराधिक अभियोजन में उपलब्ध आरोपों, तथ्यों और साक्ष्यों के उसी सेट पर शुरू की गई थी और इसलिए, आपराधिक मामले के अंतिम परिणाम की प्रतीक्षा करने के बजाय और विभागीय कार्यवाही के निष्कर्ष को मजबूर करके, प्रत्यर्थियों ने याचिकाकर्ता से अपने बचाव का खुलासा करने का प्रयास किया है, जिसे आपराधिक कार्यवाही में उठाया जाना था, जो कानून की नजर में अनुमेय नहीं है।

उनके तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने *व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य* 1998 (8) एस. सी. सी. 1 और *पुलिस आयुक्त बनाम जय भगवान* (2011) 6 एस. सी. सी. 376 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया। यह प्रस्तुत किया जाता है कि न तो शिकायतकर्ता तवीता खालखो और न ही बालकिशुन साहू नामक अन्य गवाह से पूछताछ की गई थी।

यह प्रस्तुत किया जाता है कि विभाग की कार्यवाही के दौरान डी. एस. पी. से भी पूछताछ नहीं की गई है और केवल दस्तावेजों के आधार पर, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ आरोपों के लिए दोषी ठहराया है।

यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, सजा के विवादित आदेश को दरकिनार किया जा सकता है और प्रतिवादियों को सभी परिणामी लाभों के साथ याचिकाकर्ता को वेतन के पूरे बकाया का भुगतान करने का निर्देश दिया जा सकता है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि रिट याचिका विचारणीय नहीं है और योग्यता से रहित है। प्रत्यर्थियों के विद्वान वकील ने आगे कहा है कि याचिकाकर्ता ने वैधानिक अपील के उपाय का लाभ नहीं उठाया है और याचिकाकर्ता को अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष अपील करना चाहिए था।यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैरा 35 में गलत तरीके से कहा

है कि उसके पास इस न्यायालय के समक्ष जाने के अलावा कोई अन्य समान रूप से प्रभावी या वैकल्पिक उपाय नहीं है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता को विचाराधीन राशि लेने के लिए रंगे हाथों पकड़ा गया था और इस तरह, उसे उसके खिलाफ विभागीय कार्यवाही का समापन करते हुए पूछताछ अधिकारी द्वारा सही तरीके से दोषी ठहराया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि विभागीय कार्यवाही में शिकायतकर्ता या किसी गवाह से पूछताछ की आवश्यकता नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि चूंकि प्रतिवादी ने रिट याचिका की गैर-रखरखाव की याचिका उठाई है और इस तरह, विस्तृत जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है और याचिकाकर्ता को अपने मामले का बचाव करने का उचित अवसर दिया गया था। यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1930 की धारा 55 के तहत विभागीय कार्यवाही शुरू की गई थी और उक्त नियम में अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित सजा के आदेश के खिलाफ विभागीय अपील का प्रावधान है, हालाँकि, याचिकाकर्ता ने विभागीय अपील दायर करने के उस वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाए बिना, सीधे इस रिट याचिका को दायर किया है और इसलिए इसे खारिज किया जा सकता है।

5. जवाब में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि जैसा कि प्रतिवादी द्वारा महामहिम, झारखंड के राज्यपाल (अनुलग्नक 14) के आदेश के तहत और कार्यकारी कार्य के नियमों के भाग । के खंड 9 के अनुसार 16 जनवरी, 1979 को जी. एस. आर. 3 द्वारा प्रकाशित किया गया था, उन्होंने वास्तविक धारणा के तहत अपील दायर नहीं की है क्योंकि परिषद को राज्यपाल को दी गई सभी सलाह के लिए सामूहिक रूप से जिम्मेदार कहा गया था और इन नियमों के अनुसार राज्यपाल के नाम पर सभी कार्यकारी आदेश जारी किए गए हैं। इसलिए, क्योंकि विवादित आदेश राज्यपाल के नाम से जारी किया गया था और इसलिए, अपील दायर करने की आवश्यकता नहीं थी।

6. इस मामले के अभिलेख का अवलोकन किया और दोनों पक्षों के निवेदन पर विचार किया।

7. यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता को बिहार लोक सेवा आयोग में प्रतिस्पर्धा करने के बाद बाल विकास परियोजना अधिकारी (सी.डी.पी.ओ) के रूप में नियुक्त किया गया था। इसके बाद, वह अपने कर्तव्यों का पालन कर रही थी। प्रपत्र "क" में आरोप तय करने के समय और जब विभागीय कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया गया था और घटना के समय भी, वह सी. डी. पी. ओ., मंदार, रांची के रूप में तैनात थी और वह वर्तमान में, सी.डी.पी.ओ. के रूप में कार्यरत है, जो जिला हजारीबाग के चर्चु ब्लॉक में तैनात है। जबकि याचिकाकर्ता सी. डी. पी. ओ., मंदार के रूप में कार्य कर रहा था, याचिकाकर्ता के खिलाफ अवैध संतुष्टि के कथित अपराध के लिए प्राथमिकी (अर्थात अनुलग्नक-2) दर्ज की गई है और जिसके

अनुसार 2006 का सतर्कता पी. एस. मामला संख्या 13 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 9/13 के तहत स्थापित किया गया था।

8. कथित एफ. आई. आर. के अनुसार, कहा जाता है कि याचिकाकर्ता ने आंगनवाड़ी सेविका श्रीमती से रिश्वत की मांग की थी। तबिता खालखो और पुलिस अधीक्षक, सतर्कता ब्यूरो, रांची के समक्ष की गई ऐसी शिकायत के आधार पर, एक छापा मारा गया और याचिकाकर्ता को उक्त तबिता खालखो से 5,000/- रुपये की रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। याचिकाकर्ता को उसी दिन यानी दिनांक 27.11.2006 को गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने एक जमानत याचिका, यानी 2006 की बी. ए. संख्या 9133 दायर की और उसे इस अदालत की समन्वय पीठ के आदेश द्वारा जमानत दे दी गई।याचिकाकर्ता को गिरफ्तारी की तारीख से दिनांक 23.12.2006 तक निलंबन में रखा गया था, जिसके बाद दिनांक 04.05.2007 (यानी अनुलग्नक-3) के आदेश के माध्यम से निलंबन आदेश को रद्द कर दिया गया था और आगे निर्णय लिया गया है कि निलंबन के दौरान सेवा की अवधि, आपराधिक अभियोजन के समापन पर नियमित की जाएगी।

याचिकाकर्ता को गिरफ्तारी की तारीख से दिनांक 23.12.2006 तक निलंबन में रखा गया था, जिसके बाद दिनांक 04.05.2007 (यानी अनुलग्नक-3) के आदेश के माध्यम से निलंबन आदेश को रद्द कर दिया गया था और आगे निर्णय लिया गया है कि निलंबन के दौरान सेवा की अवधि, आपराधिक अभियोजन के समापन पर नियमित की जाएगी।

9. सतर्कता विभाग द्वारा प्रत्यर्थी-विभाग को भेजे गए पत्र के आधार पर, यह निर्णय लिया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की जानी है, और यह निर्णय झारखंड के राज्यपाल के नाम से पारित आदेश के माध्यम से लिया गया था, जो ज्ञापन संख्या 1393 दिनांक 20.09.2007 में निहित है। याचिकाकर्ता को आरोप पत्र/ प्रपत्र "क" ' भी दिया गया था। शुल्क ज्ञापन/प्रतापत्र के. ए. 'की एक प्रति के साथ दिनांकित कार्यालय आदेश की फोटोकॉपी अनुलग्नक-4 श्रृंखला के रूप में संलग्न हैं।

10. यह स्पष्ट करता है कि प्रपत्र "क" में निहित आरोप 5,000/- रुपये की अवैध संतुष्टि का आरोप लगाता है और सतर्कता विभाग के संचार के आधार पर और प्रपत्र "क" में निहित आरोप पत्र में आरोप प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों की प्रतिकृति है।

11. याचिकाकर्ता ने उक्त संचार का जवाब दिया और आवश्यक दस्तावेजों और गवाहों की सूची की जांच करने की मांग की। याचिकाकर्ता ने आई. डी. 1 (अर्थात अनुलग्नक-5) पर प्रस्तुत अपने जवाब में आगे कहा कि विभागीय कार्यवाही पर रोक लगाई जानी चाहिए, क्योंकि उसी आरोप पर एक आपराधिक मामला पहले से ही चल रहा है।

12. याचिकाकर्ता को जवाब प्रस्तुत करने के लिए फिर से नोटिस दिया गया, क्योंकि एक अन्य जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था और जांच को फिर से शुरू करने का निर्णय लिया गया था, और इस संबंध में, याचिकाकर्ता को दिनांक 10.09.2010 (यानी अनुलग्नक-7) को नोटिस दिया गया था।

याचिकाकर्ता ने अपना जवाब दिनांक 07.11.2010 (यानी अनुलग्नक-8) को दिनांकित 10.09.2010 के नोटिस में प्रस्तुत किया और जाँच अधिकारी से गवाहों और दस्तावेजों की सूची की भी मांग की, लेकिन उसे वह नहीं दिया गया।

जाँच अधिकारी ने दूसरी बार विभागीय कार्यवाही को स्थगित रखने के लिए दिनांक 16.05.2011 (अर्थात अनुलग्नक-9) को एक आदेश पारित किया।

13. याचिकाकर्ता को तीसरी बार जवाब प्रस्तुत करने के लिए फिर से नोटिस दिया गया क्योंकि एक अन्य जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था और जांच को फिर से शुरू करने का निर्णय लिया गया था और याचिकाकर्ता को दिनांक 15.01.2015 को नोटिस दिया गया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने अपना जवाब प्रस्तुत किया। 15.01.2015 दिनांकित नोटिस और जवाब की फोटोकॉपी को अनुलग्नक-10 (श्रृंखला) के रूप में संलग्न किया जा रहा है।

14. इसके बाद, प्रतिवादी के समक्ष अंतिम रिपोर्ट दिनांक 07.09.2015 पर प्रस्तुत की गई, और यह रिपोर्ट याचिकाकर्ता को दिनांक 04.12.2015 के दूसरे कारण बताए जाने के नोटिस के माध्यम से उपलब्ध कराई गई। अंतिम जांच रिपोर्ट दिनांक 07.09.2015 और दूसरा कारण बताएँ नोटिस दिनांक 04.12.2015 के साथ आवरण पत्र की फोटोकॉपी क्रमशः अनुलग्नक-12 और 12/1 के रूप में संलग्न हैं।

15. याचिकाकर्ता ने अपना जवाब दिनांक 21.12.2015 (यानी अनुलग्नक-13) को दिनांकित 04.12.2015 के दूसरे कारण बताएँ नोटिस में प्रस्तुत किया। इसके बाद, याचिकाकर्ता को प्रस्तावित सजा पर कोई नोटिस नहीं दिया गया और सजा का आदेश दिनांक 21.11.2016 (अर्थात अनुलग्नक-14) को पारित किया गया।

16. ऐसा भी प्रतीत होता है कि सजा का आदेश पारित करने से पहले लोक सेवा आयोग से राय नहीं ली गई थी और सजा का आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को सूचित नहीं किया गया था।

17. जहाँ तक तत्काल रिट याचिका की स्थिरता का संबंध है, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स के पंजीयक, मुंबई और अन्य के मामले में 1998 (8) एस. सी. सी. 1 में पैरा 15 में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया हैः –

पैरा 15:-संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत, उच्च न्यायालय को मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका पर विचार करने या न करने का विवेकाधिकार है। लेकिन उच्च न्यायालय ने अपने ऊपर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं जिनमें से एक यह है कि यदि कोई प्रभावी और प्रभावी उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय आम तौर पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा। लेकिन इस न्यायालय द्वारा वैकल्पिक उपचार को लगातार कम से कम तीन आकस्मिकताओं में एक बाधा के रूप में काम नहीं करने के लिए अभिनिर्धारित किया गया है, अर्थात्, जहां किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गई है या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है या जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है या किसी अधिनियम के अधिकारों को चुनौती दी गई है। इस मुद्दे पर बहुत सारे मामले-कानून हैं लेकिन फोरेंसिक बवंडर के इस चक्र को काटने के लिए, हम संवैधानिक कानून के विकासवादी युग के कुछ पुराने फैसलों पर भरोसा करेंगे क्योंकि वे अभी भी इस क्षेत्र में हैं।

18. यह स्पष्ट होता है कि रिट याचिका को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 26.9.2022 को स्वीकार किया गया था। इसलिए, अपील के वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाने के लिए अब इस स्तर पर निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है।

19. 1998 (8) एस. सी. सी. 1 में दिए गए माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय से यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि वैकल्पिक उपाय उच्च न्यायालय के लिए उस मामले पर विचार करने के लिए बाधा नहीं है जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए विभागीय कार्यवाही में सजा का आदेश पारित किया गया है और वर्तमान मामले में, सजा का आदेश किसी भी गवाह की जांच किए बिना और किसी भी दस्तावेज को प्रदर्शनी के रूप में चिह्नित किए बिना पारित किया गया है जो अवैध है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया जाना चाहिए।

20. यह (2009) 2 एस. सी. सी. 570 पैरा-23 में रिपोर्ट किए गए रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य के मामले में निम्नानुसार आयोजित किया गया हैः –

"पैरा-23:-इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी का आदेश किसी भी कारण से समर्थित नहीं है। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर नागरिक परिणाम होते हैं, इसलिए उचित कारण निर्धारित किए जाने चाहिए थे। यदि जांच अधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया था, तो इसका कोई कारण नहीं था कि आपराधिक अदालत द्वारा स्वयं के साक्ष्य के आधार पर पारित आरोपमुक्त करने के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। अपराध की ओर इशारा करते हुए अभिलेख पर लाई गई सामग्री को साबित करने की आवश्यकता है। निर्णय कुछ सबूतों पर लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य है। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत हैं। चूँकि जाँच अधिकारी की रिपोर्ट केवल अनुमानों और अटकल पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं थे। सन्देह, जैसा कि सर्वविदित है, चाहे वह कितना भी अधिक क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में कानूनी प्रमाण का विकल्प नहीं माना जा सकता है।"

21. (2011) 6 एस. सी. सी. 376 में पैरा 16 में रिपोर्ट किए गए पुलिस आयुक्त बनाम जय भगवान के मामले में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया हैः –

> *पैरा 16:-यह अनुमान लगाना भी काफी अव्यवहारिक प्रतीत होता है कि इतने सारे यात्रियों की उपस्थिति में, प्रत्यर्थी ने धन उगाही की होगी। 100 रुपये प्राप्त करने का आरोप को अवैध संतुष्टि के रूप में संदेह और संभावनाओं के आधार पर तैयार किया गया है, जबकि इसे प्रतिबादी द्वारा शिकायतकर्ता को 100 रुपये वापस करने के उदाहरण के साथ जोड़ने की कोशिश की गई है। पूरी जाँच में कई अन्य कमियाँ हैं और जाँच जैसे कि श्रीमती रंजना कपूर का बयान इंस्पेक्टर द्वारा दर्ज नहीं किया गया था और इंस्पेक्टर ने भी लिखित रूप में नहीं लिया और उनके द्वारा की गई शिकायत को भी प्रमाणित नहीं किया। एस. पी. नारंग का बयान भी इंस्पेक्टर ने दर्ज नहीं किया था। इंस्पेक्टर ने न तो रुपये जब्त किए थे और न तो 100 के नोट का नंबर ही लिखा था। विभागीय कार्यवाही के दौरान श्री नारंग से भी पूछताछ नहीं की गई थी। विभागीय कार्यवाही के दौरान शिकायतकर्ता और पी. एस. नारंग से पूछताछ न करने से प्रतिवादी को जिरह के अधिकार से वंचित कर दिया गया है और इस प्रकार दिल्ली पुलिस (एफ एंड ए) नियम, 1980 के नियम 16 (iii) का उल्लंघन हुआ है।"*

22. वर्तमान मामले में भी जांच अधिकारी शिकायतकर्ता-तवीता खालखो और डी. एस. पी., जो मामले के आई. ओ. हैं, से पूछताछ करने में विफल रहे हैं।

23. ऊपर की गई चर्चाओं और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, ज्ञापन संख्या 3132 (यानी इस रिट आवेदन के अनुलग्नक-14) के माध्यम से पारित आदेश में निहित सजा का विवादित आदेश रद्द कर दिया गया है और इसके परिणामस्वरूप, यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता परिणामी लाभों के साथ अपने वेतन के बकाया का हकदार है।

24. इस प्रकार, इस रिट याचिका की अनुमति है।

(न्यायमूर्ति संजय प्रसाद)

झारखंड उच्च न्यायालय, रांची
दिनांक 20 फरवरी, 2024

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|